International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 17-07-2026, Accepted: 18-08-2026, Published: 03-09-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 144-146

डॉ. शरद सिंह की कहानियों में व्यक्त विद्रोही नारी जीवन

डॉ. सुखदेव रामा पाटील
हिंदी विभाग, श्री दत्त कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, हदगांव, महाराष्ट्र, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12227

सारांश
आधुनिक हिंदी कथा लेखन में डॉ. शरद सिंह का नाम आज प्रमुख लेखिकाओं में लिया जाता है। नारी जीवन की नब्ज को टटोलकर और उसे भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य के साथ पाश्चिमात्य संस्कृति का असर किस तरह हो रहा है इसका यथार्थ अंकन उन्होंने अपने कहानियों में किया है। नारी शोषण, नारी संवेदना, नारी विद्रोह, नारी उपेक्षा, नारी का मानसिक द्वंद्व और रिश्तों के परिप्रेक्ष्य में नारी जैसे नारी जीवन से जुडे आयाम उनके कथा साहित्य में परिलक्षित होते हैं। स्वंय नारी होने के कारण उन्होंने नारी जीवन भोगा है, जिया है। खुद की अनुभूति और सामाजिक अनुभूति के आधार पर उन्होंने बेबाक तरीके से नारी जीवन को रेखांकित करते हुए नारी के विद्रोह को सामने लाया है। श्तीली तीली आगश, श्बाबा फरीद अब नहीं आतेश, श्छिपी हुई औरत और अन्य कहानियाँश और श्राख तेरे अंगराश आदि कहानियों में भी नारी का जीवन केंद्र में दिखाई देता है। भारतीय समाज और भारतीय नारी के परिप्रेक्ष्य में विद्रोही नारी जीवन का अध्ययन हमने श्बाबा फरीद अब नहीं आतेश इस कहानी संग्रह द्वारा रेखांकित किया है।

मूल शब्दः विद्रोह, अनुभूति, उपेक्षा, संघर्ष, संवेदना, द्वेष, नीति, अस्तित्व, वंचित, पौरुषत्व, निडर, अन्याय, बलात्कार, ज्वालामुखी, सिंदूर, संकीर्ण, बहिष्कार, मानवीयता।

डॉ. शरद सिंह का 'बाबा फरीद अब नहीं आतें' और 'तीली तीली आग' यह दोनों चर्चित कहानी संग्रह है, जो क्रमश: सन 1999, 2003 सामायिक प्रकाशन जटवाडा, दरियागंज, नई दिल्ली से में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत कहानिसंग्रह में क्रमश: कुल इक्कीस और सत्रह कहानियाँ है जो स्त्रियों के जीवन संघर्ष को रेखांकित करती है। जिसमें से कुछ कहानियों का विद्रोही नारी जीवन के दृष्टि से अध्ययन किया है। आधुनिक हिंदी कथा लेखन में डॉ. शरद सिंह का नाम आज प्रमुख लेखिकाओं में लिया जाता है। भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य के साथ ही पाश्चिमात्य संस्कृति का असर किस तरह हो रहा है इसका यथार्थ अंकन उन्होंने अपने कहानियों में किया है। नारी शोषण, नारी विद्रोह, नारी उपेक्षा, नारी संवेदना, नारी का मानसिक द्वंद्व और रिश्तों के परिप्रेक्ष्य में नारी जैसे नारी जीवन से जुडे आयाम उनके कहानियों में परिलक्षित होते हैं। स्वंय नारी होने के कारण उनके जीवन को उन्होंने खुद भोगा और जिया है। खुद की अनुभूति और सामाजिक अनुभूति के आधार पर उन्होंने बेबाक तरीके से नारी जीवन को रेखांकित करते हुए नारी के विद्रोह को सामने लाया है।

विद्रोही नारी जीवन

'विद्रोह' मूलतः संस्कृत शब्द है। डॉ. आ. ह. साळुंखे अपने 'विद्रोही तुकाराम' ग्रंथ में विद्रोही शब्द का अर्थ लिखते हैं– "विद्रोही इस शब्द का अर्थ 'द्रोह' इस अर्थ से नहीं है। यह तो क्रांति की परिभाषा करता है। उसी से मिलता–जुलता यह शब्द विद्रोह है।"[1] उसका अर्थ है "किसी के प्रति किए जाने वाला द्रोह अर्थात शत्रुता पूर्ण कार्य विशेषता राज्य या शासक के प्रति अविश्वास उत्पन्न होने पर उसकी आज्ञा विधान आदि के विरुध्द किए जाने वाला उपद्रव।"[2] संपा. आदिशकुमार जैन, नालंदा विशाल शब्दसागर कोश में विद्रोह का अर्थ बताते हैं– "किसी के प्रति होने वाला वह द्वेष या आचरण जिसको उसे हानि पहुँचे, राज्य में होने वाला भारी उपद्रव जो राज्य को हानि पहुँचाने या नष्ट करने के उद्देश्य से हो, क्रांति, बगावत।"[3] याने विद्रोह तो अन्याय, अत्याचार के विरोध में होता आया है। उसे क्रांति या बगावत भी कहा जाता है।

आधुनिक युगीन सामाजिक परिवर्तन की लहर और साथ सामाजिक सुधारकों के सामाजिक आंदोलन के कारण नारी को अपने 'स्व' का अहसास हुआ। शिक्षा, संवैधानिक अधिकार और आर्थिक स्वावलंबन से नारी 'स्व' अस्तित्व के प्रति सचेत होने लगी। नारी जीवन में आए हुए इस परिवर्तन का परिणाम साहित्य, संस्कृति और समाज जीवन पर भी पड़ा और नारी में नई प्रेरणा का विकास हुआ। सृष्टि के निर्माण और संचालन में पुरुष और नारी दो मूलभूत तत्व है। लेकिन पुरुष को मनुष्य और मानव रुप में देखा जाता है तो नारी की पहचान भी नारी ना होकर मानवी रुप में होनी चाहिए। पुरुष की जननी होकर भी समाज में उसका स्थान दूसरे दर्जे का रहा और यही दोहरेपन की स्थिति सदियों से भारतीय समाज में पनपती रही। सामाजिक स्थान, दर्जा और अस्तित्व के स्तर पर उसका अपमान किया गया। लिंगभेद नीति के साथ ही संकीर्ण सामाजिक परम्पराओं के आधार पर सिर्फ नारी को ही प्रताड़ित किया गया। स्वाभाविक जीवन से उपेक्षित रखने के साथ ही उसके मानवीय अधिकारों से भी उसे वंचित रखा गया। सदियों से नारी को विषमतावादी संस्कृति की बेड़ियों में कैद करके उसे अबला जीवन जीने पर मजबूर किया गया। डॉ. रामकुमार गडकर का मत है कि, "सेक्स, समाज और संस्कृति इन तीनों की बंदूक की नोंक पर पुरुष ने स्त्री को अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए दबा रखा था। इसी दबाव के नीचे रहना वह अपना कर्तव्य समझती थी।"[4] इसलिए नारी के मन में उत्पन्न असंतोष और विद्रोह को आज खुली चुनौती दी जा रही है। डॉ. शरद सिंह ने इसी दृष्टि से नारी विद्रोह को अपने साहित्य में अंकित किया है।

'गीला अंधेरा' कहानी की कुसुमबाई के तेवर भी विद्रोही रुप में लेखिका ने अंकित किए है। गाँव के पंचायती चुनाव में सदस्य के रुप में चुनाव प्रचार करते समय वह महिलाओं को उसे वोट देने के लिए प्रोत्साहित करते समय रामायण में प्रकार सीता पर किस अन्याय हुआ इसका वास्ता देकर महिलाओं से वह निडर होकर कहती है–"अगर रामजी की जगह सीता मैया राजा होती तो उन्हें रामजी जंगल न भेज पाते। सीता आपना फैसला खुद करतीं। उनके खिलाफ धोबी नहीं बोल पाता।"[5] गाँव की औरतों को भी यह बात जचती है किस प्रकार रामायण में रामजी द्वारा

सीता पर अन्याय हुआ और इसलिए राजसत्ता महिलाओं के हात में ही होने चाहिए, ताकि उन पर कभी अन्याय ना हो। लेकिन गाँव के तथाकथित पंडित द्वारा उसे धर्म के मामले में टांग आडने के कारण डांटते हुए कहता है कि, "क्या उलटा–सीधा बकती रहती हो। राम–सीता को आडे मत लाओ। चुनाव में खडी क्या हो गईं, धर्म की टांगे तोड़ने लगी!"[6] लेकिन कुसुमाबाई भी ऐसे पांखडों के धार्मिक अवसरवादिता को जानती थी। इसलिए वह पंडितजी पर बरस कर उसे कहती है कि, "काये पंडितजी, अपनी पंडिताइन को तो सात ताले में घुसा के रखे हो और हम पे रोब गांठत हो। मरद जात जो ठहरे।"[7] कुसुमबाई का विद्रोही रुप देखकर पंडितजी मुँह देखता ही रहता है, क्योंकि कुसुमबाई ने उसके पौरुषत्व पर तंज जो कसा था। इतना ही नहीं जब उसे पता चला कि चुनाव के दिन उसकी प्रतिद्वंद्वी महिला द्वारा वोट डालते समय लाठियाँ चलाकर माहौल को खराब करना चाहती है तो कुसुमाबाई क्रोध से उस पर दहाडती है कि, "हरामजादी आपने–आपको समझती क्या है? चीर के न घर दूँ ऊको, बड़ी आई लाठी चलाने वाली।"[8] उसके विद्रोही तेवर अन्याय के प्रति लडनेवाले है। इसलिए कुसुमाबाई अपने विद्रोही तेवर के कारण ही गाँव की महिलाओं का दिल जीत कर ही चुनाव जीत जाती है।

'मरद' कहानी की शुरुआत ही नायिका सुंदरा के विद्रोही तेवर से होती है– "सुंदरा शेरनी की तरह दहाड रही थी। अपनी साडी का छोर कमर पर कसे हुई वह बुंदेली गालियों की बौछार कर रही थी।" इसका कारण भी ऐसा था कि शौच के लिए आई सुंदरा का गाँव के सरपंच द्वारा झाडियों की आड में बलात्कार किया जाता है, लेकिन सुंदरा को जब आश्चर्य लगता है कि उसका मरद पति रमेसर अपनी घरवाली की इज्जत लुटने पर भी सरंपच की ताकद के कारण घर में ही बैठता है। सास भी उस तरह रवैया अपनाकर पीड़ित बहू को ही समझाने लगती है। लेकिन जब सरपंच सुंदरा की बेटी चमेली की भी इज्जत लुटता है तब सुंदरा के शरीर की लाही लाही होती है। पति द्वारा इस बार भी खून खौलता नहीं है और चमेली का स्कूल जाना बंद करने का सुझाव पति द्वारा मिलने पर सुंदरा पति रमेसर की नामर्दी पर भडक उठती है कि, "आहा, हा! स्कूल जाना छुडवा दो। स्कूल नहीं जाएगी और शौच के लिए? मैं कोई अमरित चख के आई हूँ? इस बुढ़िया (सास) जैसे मैंने भी किसी दिन खाट पकड़ ली तो कौन जाएगा चमेली के साथ सुबह–शाम? फिर तुम्हें क्या, तुम तो चमेली को भी समझा दोगे कि चुप करके बैठ! नामरद कहीं के"[9] क्रोधित बना रुप सुंदरा का किसी ज्वालामुखी से कम नहीं था। सरपंच अपने ताकद का और जाति का रुतबा दिखाकर गाँव की गरीब दलित महिलाओं को सदियों से अपने हवस का शिकार बनाता रहता था। अबला नारी समझकर कई महिलाएँ अपनी जग हँसी के कारण चुपचाप अन्याय सहती रहती थी। थाने में कोई भी शिकायत देने के लिए डरता था। इसी डर के कारण सुंदरा भी सरपंच के खिलाफ कोई शिकायत नहीं करती। मगर अब उसके बेटी पर हुए अन्याय को देखकर उसका खून खौलने लगता है। मर्दों की मरदांगी केवल स्त्री को भोगने के लिए या किसी स्त्री को भोगता हुआ देखकर भी चुप बैठे, क्या इसमें है? मरदांगी या पुरुषार्थ। ऐसे बातों से क्रोधित होकर सुंदरा अपनी नाकामी पति को कहती हैं कि, "खूब समझती हूँ, तेरे को भी और तेरे सरपंच को भी। वो भी नामरद, तू भी नामरद। एक को झोपडियों की ओट चाहिए तो एक को कमरे की ओट.... तभी दिखती है तुम लोगों की मरदानगी। तेरे से कुछ नहीं होगा..... तू तो सो रह अपनी बुढ़िया को साथ... जो बनवाना, करना है, मैं बनवाऊँगी करूँगी। लुगाई भी मैं ही हूँ और मरद भी मैं ही!.... तू बैठ के सोच! आ के देखे तो साला सरपंच, गाड दूंगी उसे खुड्डी में... अब मैं वो सुंदरा नहीं कि तेरे कहे से चुप बैठू, अब मैं माँ हूँ चमेली की, समझा!"[10] क्रोध से दहाड कर सरपंच को और नाकामी पति को ललकारती है।

'बेहरबानू' यह एक लड़की की कहानी है जो केवल इन्सानियत को ही अपना मजहब मानने वाली है। धर्म–मजहब की संकीर्ण बातों का वह विरोध करती है। नायिका बेहरबानू एक मुस्लिम लड़की होने के कारण उसके घरवाले उसका विवाह बुढे या उम्र से दुगने व्यक्ति के साथ केवल मेहर पाने हेतु करना चाहते हैं। उसके लिए उसे बार–बार प्रताड़ित भी होना पड़ता है। एक हिंदू लड़के को उसके प्रताड़ित जीवन पर तरस आता है और इन्सानियत के नाते वह उससे अगले पूनम को शादी करने का वादा करके उसके हात में सिंदूर की पुड़ी थमाकर चला जाता है। लेकिन उसकी अपघात में मृत्यु हो जाती है। इस बात की बेहरबानू को खबर नहीं। वह उसकी राह देखती रहती और सिंदूर की पूड़िया से अपना मांथा रंगाती रहती है। आगे इमरतखाँ से उसका विवाह हो जाता है और कुछ ही पलों में उसका देहांत भी हो जाता है। अब बेहरबानू एक धाबा चलाकर अपना गुजारा करती है, लेकिन उस लडके को वह कभी नहीं भूलती। उसकी यादों में वह मुस्लिम होकर भी माँग में सिंदूर लगाती है। किसी भी धर्म मौल्ला या धर्म के ठेकेदारों से वह नहीं डरती है। वह निर्भरता से लोगों से कहती है कि, "मेरा कोई धर्म नहीं है..... हरगिज नहीं, यह कोई जरुरी नहीं है कि हर व्यक्ति किसी न किसी मजहब से बंधा हुआ हो।"[11] मजहब के नाम पर लड़ने–मरने वाले भला क्या समझ सकते हैं, बेहरबानू के इस अहसास को कोई नहीं समझ सकता था। उस लडके के प्रेम ने उसे इन्सानियत का पाठ पढ़ाया था। उसके मौत की खबर से वह खुद को संभालकर अपने यादों में अपने दिल में उसे वह जिंदा रखती है। इसलिए वह मुसलमान धर्म से होकर भी उसके नाम का सिंदूर अपने माथे पर लगाती रहती है। हिंदू–मुस्लिम दोनों पक्ष के बहिष्कार से भी वह नहीं डरती है। धर्म के नाम पर वह खुद जलिल नहीं होना चाहती इसलिए वह लोगों को कहती है कि, "मैं जलील नहीं होना चाहती हूँ, इसलिए तो कहती हूँ कि मेरा कोई धर्म नहीं है। मैं किसी धर्म की नहीं हूँ.... कुछ चाय–पानी करना हो तो बैठो, वरना यहाँ भीड न लगाओं। मुझे अपना ढाबा चलाने दो।"[12] इस प्रकार तथाकथीत धर्म का विरोध करके केवल इन्सानियत के धर्म को ही मानने वाली बेहरबानू अपना धार्मिक विद्रोह बयान करती है। संक्षेप में कहाँ जाए तो डॉ. शरद सिंह के साहित्य में नारियाँ अन्याय के खिलाफ विद्रोह करती नजर आती है। धार्मिक बुराई या सामाजिक बुराईयों के विरोध में वे अपना विद्रोही तेवर दिखाकर अपने अधिकार प्राप्ता करती है।

निष्कर्ष: (Conclusion)

पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण सदियों से नारी को अपना जीवन पीडाओं में जीना पड़ रहा है। साथ ही सामाजिक संकीर्ण मान्यताओं से भी उसे ही प्रताड़ित होना पड़ा है और इतना ही नहीं मानवीय अधिकारों से भी उसे उपेक्षित रखकर उसका शोषण किया है। इसका कारण भारतीय समाज की विषमतावादी संस्कृति। इसलिए डॉ. शरद सिंह ने अपने साहित्यिक स्त्री–पात्रों द्वारा किस प्रकार नारी शोषणों से प्रताड़ित हो रही है। इसका वास्तव चित्रण अपने कहानियों में दर्शाया है। इसके साथ ही इन्हीं विषमतावादी संस्कृति के तहेत किए जानेवाले अन्याय का डटके मुकाबला करने वाली कई स्त्री–चरित्रों द्वारा नारी–विद्रोह एवं नारी–चेतना पक्ष्य को भी उल्लेखित किया है। आधुनिकता की आंधी दौंड में दौड रही आज की नारी स्वतंत्र एवं स्वच्छंद रुप में जीवन जीने के लिए क्यों विवश है? इसके कारणों के साथ ही इसके दूष्परिणामों की चर्चा भी लेखिका अपने साहित्य में करती नजर आती है। सामाजिक बदलते मूल्यों के कारण पारिवारिक टकराव में भी रिश्तों की परिप्रेक्ष्य में नारी अपना गृहिणी जीवन के

साथ ही माँ, पत्नी, बेटी, बहू, प्रेमिका, सहेली आदि रिश्तों में संवेदनशीलता, कर्त्यव्यपरायणता और मानवीयता को संभालते हुए लेखिका की चित्रित नारियाँ नजर आती है।

अत: हम यही कह सकते है की, 'बाबा फरीद अब नहीं आतें' और 'तीली तीली आग' यह दोनों चर्चित रचनाओं के द्वारा 'कुसुमबाई', 'सुंदरा' और 'बेहरबानू' कई स्त्री पात्रों के माध्यम से लेखिका ने नारी जीवन की सभी पहलुओं को चित्रित किया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. ए. एच. सालुंके, विद्रोही तुकाराम, पृ. सं. ०१
2. विकास कुंडलिक और मोहनदास नैमिश रॉय द्वारा लिखित उपन्यास में विद्रोह, पृ. सं. २८
3. अंत आदिश कुमार जैन, नालन्दा विशाल शब्दसागर, पृ. सं. १२६८
4. संपा. डॉ. भीमराव रामकिशन घोडगे, डॉ. सुखदेव रामा पाटील, महिला सशक्तिकरण एक चुनौती, मनोगत से.....
5. डॉ. शरद सिंह, कहानी संग्रह– बाबा फरीद अब नहीं आतें, पृ. सं. ७१
6. वही, पृ. सं. ७१
7. वही, पृ. सं. ७२
8. वही, पृ. सं. ७२
9. डॉ. शरद सिंह, कहानी संग्रह– तीली तीली आग, पृ. सं. १८
10. वही, पृ. सं. १८
11. डॉ. शरद सिंह, कहानी संग्रह– बाबा फरीद अब नहीं आतें, पृ. सं. ११०
12. वही, पृ. सं. ११०